R.M.M. Law College - Saharsa.

Manvendra Mandal - Subject- हिन्दु विवाह अधिनियम -1955
Part time Lecturer   Part - 1   (Hindu Marriage Act)

(1) हिन्दु विधि में विवाह

हिन्दुओं के विवाह से सम्बन्धित विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए भारत गणराज्य की संसद द्वारा 18 मई 1955 को एक अधिनियम को अधिनियमित किया गया जिसे हम सभी हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 के नाम जानते हैं।

हिन्दु विधि में विवाह का शाब्दिक अर्थ है "विधिपूर्वक वहन करना अथवा ले जाना"। हिन्दु धर्म एवं विधि के अन्तर्गत विवाह को मनुष्य के लिए निर्धारित संस्कारों में मुख्य संस्कार माना गया है। एक हिन्दु पिता के लिए विवाह का अर्थ है कन्या का दान करना जो कि सामाजिक ही नहीं अपितु धार्मिक दृष्टिकोण से भी पुण्य कार्य माना गया है। विवाह केवल सांसारिक बन्धन मात्र नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक संस्कार भी है जो कि हिन्दु जीवन परम्परा का अभिन्न अंग है। हिन्दु धर्म के अन्तर्गत आश्रम व्यवस्था के चार भागों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण आश्रम गृहस्थाश्रम माना गया है। अन्य तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास गृहस्थ के द्वारा ही आश्रित एवं पोषित होने के कारण उस पर निर्भर है। गृहस्थाश्रम का अर्थ है परिवार और परिवार का मूल है, विवाह। सामाजिक दृष्टिकोण से विवाह मात्र व्यक्तियों के लिए एक सामाजिक बन्धन, संविदा या दो व्यक्तियों का मिलन ही नहीं, अपितु दो परिवारों का अटूट सम्बन्ध है जो सुख-दुख तथा सांसारिक कृत्यों में एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों के निर्वहन का ध्यान रखते हैं।

हिन्दु विवाह पद्धति आज भी शास्त्रों तथा रीति-रिवाजों से विनियमित होती है। प्राचीन स्मृति वेत्ताओं, धर्मशास्त्रियों एवं टीकाकारों ने समय-समय पर बदलते समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप रीति-रिवाजों में संशोधन एवं परिवर्तन करने की भरसक कोशिश तो की, किन्तु परिस्थितिजन्य कारणों से मूल विचार की धारा में अधिक परिवर्तन संभव नहीं हो पाया। उदाहरणार्थ प्रायः सभी प्राचीन विधिवेत्ताओं ने विवाह में कन्या की भूमिका को गौण माना है तथा यह निरूपित किया है कि विवाह कन्या के पिता एवं वर का पवित्र संव्यवहार है और जैसा कि इतिहास से विदित है स्त्री की सामाजिक भूमिका में

Scanned with CamScanner

Q.2 हिन्दू विधि में विवाह (Marriage in Hindu Law)

उत्तर: हिन्दू उपासना में विधि अथवा नारी को सम्मान पूर्वक की अनेक अत्याधिक रूप माना जाने लगा, इसका परिणाम समाज में असमान विवाह, बाल विवाह, सतीप्रथा, देवदासी और दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों के रूप में हिन्दू समाज को भोगना पड़ रहा है।

हिन्दुओं के प्राचीनिक आचार-विचार को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला ग्रंथ मनुस्मृति है। आचार्य मनु ने स्त्री को सदैव पराधीन एवं स्वत्वहीन माना है और यह स्पष्ट निर्देश किया है कि विवाह होने तक स्त्री को माता-पिता के संरक्षण में, विवाह के पश्चात पति के संरक्षण में तथा पतिहीन होने पर अथवा वृद्धावस्था में पुत्रों की अधीनता में रहना चाहिए। उपर्युक्त स्थिति में विवाह के सम्बन्ध में स्त्रियों की वैयक्तिक रुचि को कोई महत्व नहीं दिया जाता था और उनकी अपने विवाह के सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष सहभागिता नहीं थी।

प्राचीन शास्त्रीय विधान के अनुसार विवाह की भिन्न आठ विधियाँ स्वीकार थीं, जिन्हें विवाह के आठ प्रकार कहा जाता है—

(1) ब्राह्म विवाह (2) दैव विवाह
(3) आर्ष विवाह (4) प्राजापत्य विवाह
(5) असुर विवाह (6) गान्धर्व विवाह
(7) राक्षस विवाह (8) पैशाच विवाह

उपरोक्त आठ प्रकारों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार स्वयंवर विवाह भी प्रचलित था जो कि राजकुल से सम्बन्धित क्षत्रियों की परम्परा में मान्य था और असुर तथा गांधर्व विवाह का मिला जुला रूप था। स्वयंवर विवाह कदाचित अल्प प्रचलन में होने के कारण इसे स्वतंत्र प्रकार नहीं माना गया। इसी प्रकार विवाह का कृत्य भी विभिन्न प्रकार से सम्पादित होने से विवाह के उपरोक्त आठ प्रकार ही अस्तित्व में आये। इनमें से प्रथम चार प्रकार के विवाह शुभ श्रेणी में एवं अन्य चार प्रकार के विवाह अधम विवाह कहे जाते थे, क्योंकि बाद के चार प्रकारों में गांधर्व विवाह को छोड़कर अन्य विवाह में कन्या का बलात हरण अथवा शीलभंग किया गया होता था तथा गांधर्व विवाह में कन्या के अभिभावक की सहमति का अभाव होता था।

Scanned with CamScanner

Q3 हिन्दू विधि में विवाह (Marriage in

चूँकि हिन्दू धर्मशास्त्रों में प्राचीन काल से ही कर्मकाण्ड का आध्यात्मिक महत्व दर्शाया गया है, अतः विवाह भी एक संस्कार होने के कारण तथा दम्पति के मध्य एक आध्यात्मिक और अटूट सम्बन्ध होने के कारण कर्मकांड की व्यवस्थाओं के अनुरूप ही विवाह का निष्पादन आवश्यक है। रीति-रिवाज में प्रत्येक हिन्दू विवाह को पूर्ण सम्पादन के लिए निम्न नियमों का पालन हिन्दू विधि में अनिवार्य है-

(1) अग्नि की उपस्थिति

(2) कन्यादान

(3) सप्तपदी

यद्यपि विभिन्न समुदायों में प्रचलित रूढ़ियों के अनुसार विवाह के कृत्य व क्रियाओं में कुछ भिन्नतायें हो सकती हैं, किन्तु उपरोक्त विधानों का पालन अनिवार्य है। हिन्दू विवाह में जब तक सप्तपदी पूर्ण नहीं हो जाता तब तक विवाह को विधि सम्मत नहीं माना जा सकता है। विवाह के पश्चात स्त्री की स्थिति रक्षिता तथा पति की स्थिति रक्षक की मानी गयी है।

विवाह की अनिवार्यता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि पत्नी की अनुपस्थिति में पति के द्वारा कई धार्मिक अनुष्ठानों का किया जाना असंभव है तथा एक पुरुष के लिए निर्धारित सोलह संस्कारों में यह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। विवाह सम्पन्न होने के पश्चात प्राचीन हिन्दू विधि ने इसे पति-पत्नी के मध्य अटूट सम्बन्ध माना है। यहाँ तक कि किसी स्त्री के विधवा हो जाने पर भी उसका विवाह हिन्दू विधि के प्राचीन शास्त्रों के अनुसार निषेद है। विवाह के पश्चात स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी मानी जाती है तथा पति के द्वारा संपादित पुण्यकार्यों का फल उसे स्वतः प्राप्त माना जाता है।

सामान्य स्थिति में स्मृतिकारों ने बहुविवाह को निन्दनीय माना है। जैसे कि याज्ञवल्क्य और नारद ने एक पत्नी के होते हुए दूसरे विवाह का किया जाना निषिद्ध किया है। इसी प्रकार बहुपति विवाह को भी स्वीकार नहीं किया गया है, किन्तु बहुपत्नी विवाह का दृष्टान्त खासकर राजाओं तथा संभ्रान्त कुलीन परिवार में अधिक संख्या में पाये जाते हैं। वैदिक काल में भी बहुपति प्रथा का अस्तित्व था। द्रोपदी बहुपति प्रथा का सर्वोत्तम उदाहरण है।

चूँकि विवाह एक पवित्र संस्कार है जिस पर सामाजिक व्यवस्था की सुदृढ़ता एवं समृद्धि निर्भर है, अतः हिन्दू विधि में विवाह के कुछ श्रेणियों का स्पष्ट निषेद कर दिया गया है जैसे - प्रतिलोम विवाह, विधवा विवाह, सगोत्र विवाह, सपिण्ड विवाह आदि।

Scanned with CamScanner